RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2018-20

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 75, अंक : 15 एक प्रति 2 : रुपये
रविवार 24 जून, 2018
विक्रमी सम्वत् 2075, सृष्टि सम्वत् 1960853119
दयानन्दाब्द : 194 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–75, अंक : 15, 21-24 जून 2018 तदनुसार 10 आषाढ़ सम्वत् 2075 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

युद्ध जीतो

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम्।।

–अथर्व० ११।९।२६

शब्दार्थ-तेषाम् = उन **सर्वेषाम्** = सबके **ईशानाः** = शासक होते हुए **उत्तिष्ठत** = तुम सब उठ खड़े होओ। **यूयम्** = तुम सब **मित्राः** = एक-दूसरे से स्नेह करने वाले **देवजनाः** = देवजन, विजयाभिलाषी लोग **संनह्यध्वम्** = [शस्त्रास्त्रों से अपने को] तैयार करो, [हथियार] बाँधो। **इमम्** = इस **संग्रामम्** = संग्राम को **संजित्य** = भली-भाँति जीतकर **यथालोकम्** = अपने-अपने ठिकानों पर **वितिष्ठध्वम्** = स्थिर होओ।

व्याख्या-आर्यभाव देव=विजयी हैं। वेद में स्थान-स्थान पर जय प्राप्त करने का आदेश है। पुरोहित अपने यजमान क्षत्रियों से कह रहा है-**'प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः'** (अ० ३।१९।७) = हे अग्रगामी वीरो! चढ़ाई करो और विजय प्राप्त करो, तुम्हारे भुजा उग्र हों।

प्रस्तुत मन्त्र में भी जीतने का उपदेश है। जीतने से पहले की तैयारी का भी सङ्केत है-

(१) **उत्तिष्ठत** = उठो। पड़े मत रहो। उठने के भाव को अथर्ववेद (१०।९।३) में स्पष्ट किया है-**'उत्तिष्ठतमारभेथामादानसंदानाभ्याम्। अमित्राणां सेना अभिधत्तमर्बुदे'** = तुम दोनों (सेनापति तथा सेना) उठो! और धर-पकड़ आरम्भ करो। शत्रु की सारी सेना को बाँध डालो। युद्ध में ढीली-ढाली नीति से सफलता नहीं मिला सकती।

(२) **'संनह्यध्वम्'**-तैयारी करो, शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो जाओ। अथर्ववेद (११।१०।१) में कहा है-**'संनह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह'** = उदार होकर अपने झण्डों के साथ तैयार हो जाओ। झण्डा ले-चलने का भाव है युद्ध के लिए सुसज्जित होना। तुम्हारी तैयारी, शस्त्रास्त्र, युद्धोत्साह देखकर शत्रु **'सं विजन्ताम्'** (अ० ११।९।१२)-घबरा उठें। तू उनको **'उद्वेपय'** = (अ० ११।९।१२) = कम्पा और **'भियाऽमित्रान्त्संसृज'** = (अ० ११।९।१२) = शत्रुओं को भयभीत कर दे।

(३) **मित्राः**-तुम्हारी सेना के सैनिक और सेनापति तुम सभी परस्पर प्रीतियुक्त होकर तैयारी करो। जिस सेना में फूट होगी, पारस्परिक स्नेह न होगा, उसका पराजित होना, हारना निश्चित है, अतः विजयाभिलाषियों में पारस्परिक प्रीति का होना अत्यन्त प्रयोजनीय है।

(४) **देवाः** = देव के अनेक अर्थों में से एक अर्थ है **विजिगीषु** = विजयाभिलाषी। चढ़ाई करने वालों को देव बनकर जाना चाहिए।

यदि अपने अन्दर सन्दिग्ध भावना हो अथवा पराजय का भय हो तो पराजय अवश्यम्भावी है, अतः विजय के भावों से हृदय भरपूर होना चाहिए-**'सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत'** (अथर्व० ११।१०।१) = ये शत्रु सर्प हैं, इतरजन हैं, इन वैरी राक्षसों के पीछे दौड़ो और इन्हें पवित्र करो अर्थात् युद्ध को धर्मयुद्ध बनाओ। संग्राम जीतने का परिणाम यह हो कि **'अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन'** (अ० ११।९।२०) = सेनापति उन शत्रुओं में से किसी को न छोड़े। शत्रुरहित होकर, संग्राम जीतकर **'यथालोकं वितिष्ठध्वम्'** = यथास्थान स्थित होओ।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

आगामी आर्य महासम्मेलन बरनाला में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर के तत्वावधान में आगामी आर्य महासम्मेलन **11 नवम्बर 2018** को बरनाला में आयोजित किया जा रहा है। इसलिये पंजाब की समस्त आर्य समाजों से निवेदन है कि वह इन तिथियों में अपनी अपनी आर्य समाज का कोई कार्यक्रम न रखें और इस आर्य महासम्मेलन को सफल बनाने के लिये पूरी शक्ति से जुट जाएं। आपके सहयोग से इससे पूर्व 17 फरवरी 2017 को लुधियाना और 5 नवम्बर 2017 को नवांशहर में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब सफल आर्य महासम्मेलन कर चुकी है। आशा है इस आर्य महासम्मेलन में भी आप का पूरा पूरा सहयोग मिलेगा।

प्रेम भारद्वाज
सभा महामंत्री

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत।
स हि नः प्रमतिर्मही।।

–ऋ० ६.४५.४

भावार्थ-हे ज्ञानी मित्रो! जिस जगत्पति परमात्मा ने, हमारे कल्याण के लिए वेदों को रचा, उस ज्ञान को धारण किया, सृष्टि के आरम्भ में चार महर्षियों के अन्तःकरणों में, उन चार वेदों का प्रकाश किया। वही चारों वेद, गुरु परम्परा से हमारे कानों तक पहुँचाये गये, इसलिए हमारा सबका कर्तव्य है, कि हम सब उस प्रभु की पूजा करें, वही हमारा सच्चा बन्धु है। परमेश्वर परायण होना यही हमारी बड़ी बुद्धि है। प्रभुभक्ति के बिना बुद्धिमान् पण्डित भी महामूर्ख है।

तद्विष्णोः परमं पदं पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्।।

–ऋ० १.२२.२०

भावार्थ-उस सर्वव्यापक परमात्मा के सर्वोत्तम स्वरूप को, ज्ञानी महात्मा लोग सदा प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं, जैसे आकाश में सर्वत्र विस्तार पाये हुए, सूर्य को सब लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। वैसे ही महानुभाव महात्मा लोग अपने हृदय में उस परमात्मा को प्रत्यक्ष देखते हैं।

प्रभो! हमें निर्भय कर दो

ले०-महात्मा चैतन्यमुनि महर्षि दयानन्दधाम, तहसील सुन्दरनगर, मण्डी (हि०प्र०)

एक बार हमने एक बालक से पूछा कि बताओ परमात्मा की भक्ति क्यों करनी चाहिए तो उसने तुरन्त उत्तर दिया कि इससे परमात्मा प्रसन्न होते हैं। हमें आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी पण्डित रामचन्द्र देहलवी का स्मरण हो आया। एक बार उनका शास्त्रार्थ किसी मौलवी से हो रहा था तो पण्डित जी ने मौलवी से पूछा कि आप यह बताईए कि आप रूंकू क्यों करते हैं अर्थात् इबादत करती बार क्यों झुकते हो? मौलवी ने कहा कि हम खुदा को आदाब करते हैं अर्थात् उसके आगे झुकते हैं। पण्डित जी ने पूछा किसलिए? मौलवी ने तुरन्त उत्तर दिया ताकि खुदा खुश हो जाए। पण्डित जी ने कहा कि मौलवी जी आप क्या बच्चों जैसी बातें करते हो। यदि परमात्मा हमारे झुकने से प्रसन्न और न झुकने से अप्रसन्न होने लगे तो हम तो परमात्मा से भी बड़े हो गए। उनकी प्रसन्नता या अप्रसन्नता हमारे हाथ में हो गई। जब चाहें नमस्ते करके उसे खुश कर दें और नमस्ते न करके उसे दुःखी कर दें। उन्होंने मौलवी को कुरान का उदाहरण देते हुए समझाया कि परमात्मा तो सदा एकरस रहने वाला तथा आनन्दस्वरूप है। वह प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं होता है। आम लोगों की तो यही धारणा है कि परमात्मा हमारी भक्ति से प्रसन्न हो जाएंगे मगर अल्पज्ञ जीव की इतनी सामर्थ्य कहां कि परमात्मा के आनन्द में व्यवधान पैदा कर सके। प्रश्न फिर वही उभरकर आता है कि फिर परमात्मा की उपासना क्यों करें? महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करने के लिए हम परमात्मा की उपासना करें अर्थात् परमात्मा की उपासना से हमें शारीरिक बल प्राप्त होता है, आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है और इस शारीरिक तथा आत्मिक बल को प्राप्त करके हम सामाजिक उन्नति कर पाने में भी समर्थ हो सकते हैं।

हम परमात्मा की उपासना करें तो परमात्मा को लाभ होगा ऐसा कुछ नहीं है बल्कि उपासना इसलिए करें ताकि हम स्वयं लाभान्वित हो सकें। परमात्मा मानों एक महान् शक्तिपुंज है और उपासना के द्वारा हम उससे शक्ति ग्रहण कर सकते हैं। महर्षि दयानन्द जी ऋ० भा० भूमिका में लिखते हैं-'...हे परमेश्वर! आप कृपा दृष्टि से हमको सदा देखिए। इसलिए हम लोग आपको सदा नमस्कार करते हैं...... अन्न आदि ऐश्वर्य, सबसे उत्तम कीर्ति, भय से रहित और सम्पूर्ण विद्या से युक्त हम लोगों को करके कृपा से देखिए। इसलिए हम लोग सदा आपकी उपासना करते हैं।' इसलिए साधक परमात्मा से प्रार्थना करता है-

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।
ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।। 1/4 अथर्व. १८-१५-१५,६1/2

हे परमात्मा! अन्तरिक्ष लोक हमें निर्भयता प्रदान करे, द्युलोक वा पृथिवी लोक हमारे लिए अभय हों, पश्चिम में वा पीछे, पूर्व में वा आगे, उत्तर में वा दक्षिण में वा नीचे से, हमें निर्भयता प्राप्त हो अर्थात् सब ओर से हम निर्भय बनें। हे अभय प्रभु! हमें मित्र से भय न हो और अमित्र से भी भय न हो, जाने व न जाने हुए लोगों से भय न हो, दिन और रात्रि सभी कालों में हम निर्भीक हों। सब आशाएं वा दिशाएं हमारे लिए हितकारी हों।

ओ३म् पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्त्रैरूत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः।। 1/4 ऋ० ०१-१८६-४1/2
इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव। उत प्र वर्धया मतिम्।। 1/4 ऋ० ८-६-३२ 1/2
इन्द्र शुद्धा न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः।। 1/4 ऋ० ८-६५-८ 1/2
पूशेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्मां अभयतमेन नेशत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो ५ प्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन्।। 1/4 ऋ० १०-१७-५ 1/2

हे तेजस्वी जगदीश्वर! हमें पालित करो और हमारे प्रिय हृदय सदन में आकर देदीप्यमान हो जाओ। तेरे स्तोता को निश्चय ही न तो आज और किसी समय भय होता है। हे परमात्मा मेरी इस सुन्दर स्तुति को स्वीकार करो। मुझे प्रकृष्टतया शोभन प्रकार से रक्षित करो, मेधा और सुमति को प्रवृद्ध करो। हे प्रभु! आप हमारे पास आओ। हे शुद्ध प्रभु आप शुद्ध रक्षाओं के साथ आओ, आप हमें ऐश्वर्य प्राप्त कराओ, आप हमें आनन्दित करो। हे पोषक परमात्मा! आप मेरी इन सब आशाओं को तथा दिशाओं को अनुक्रम से जानते हो। आप हमें सर्वाधिक निर्भय मार्ग पर ले चलें।...... परमात्मा की उपासना करने से साधक मानों अपने चारों ओर एक रक्षा कवच तैयार कर लेता है, जिसमें वह स्वयं को सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं से सुरक्षित अनुभव करता है। उपासक कह उठता है-

ओ३म् प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा धर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिष वर्चसा च।
जरदृष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्त्रायुः सकृतश्चरेयम्।।1/4 अथर्व० १७-१-२७1/2
ओ३म् परीतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मामा प्रापन्निश्वो दैव्या या मा मानुशरवसृष्टा वधाय।।1/4 अथर्व० १७-१-२८1/2

सृष्टि के स्वामी द्वारा प्रदत्त वैदिक-धर्म-रूप कवच से ढका हुआ तथा सर्वद्रष्टा परमात्मा की दिव्य ज्योति और तेज द्वारा ढका हुआ मैं, जरावस्था तक पहुंचुं तथा सत्कर्मों को करके मैं धर्मवीर बनूँ, उन्नति के शिखर पर चढ़ूँ, सौ वर्ष से भी अधिक आयु वाला बनूँ और सदा उत्तम कर्म करता हुआ विचरूं। मैं अब ब्रह्म-रूपी कवच द्वारा सब ओर से घिरा हुआ हूँ और सर्वद्रष्टा की ज्योति तथा तेज द्वारा सब प्रकार से घिरा हुआ हूँ। इसलिए मेरे वध के लिए, मुझ पर छोड़े गए, एन्द्रियादिक तथा मानसिक बाणों के प्रहार नहीं होते।

हमें इतिहास में ऐसे अनेकों महापुरूष दिखाई देते हैं जो परमात्मा के रक्षा कवच में स्वयं को अनुभव करते हुए सदा निर्भय होकर विचरते रहे। योगीराज श्रीकृष्ण जी के जीवन में कितने ही कष्ट आए मगर वे कभी भी विचलित नहीं हुए। यहां तक कि दुर्योधन की कुटिलता से भली प्रकार परिचित होने पर भी वे समझौता करने के लिए दुर्योधन के कक्ष में अकेले ही चले जाते हैं..... महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन में ऐसे अनेक ही क्षण आए जिनमें साधारण व्यक्ति घबरा जाता मगर वे कभी भी हताश व निराश नहीं हुए। जब काशी के विद्वानों के साथ उनका शस्त्रार्थ होना निश्चित हुआ तो वे अकेले होने के बावजूद भी तनिक भी नहीं घबराए। एक ओर दयानन्द जी अकेले और दूसरी ओर पचासों विद्वान् ही नहीं बल्कि वहां का राजा भी उन्हीं विद्वानों की ओर ही था। महर्षि जी अपनी कुटिया में आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए उपासना में बैठ गए तथा उन दिनों उनके साथ रहने वाला ब्रह्मचारी बलदेव शास्त्रार्थ स्थल पर यह देखने के लिए गया कि वहां की क्या स्थिति है। वहां जाकर उसने देखा कि दूसरे पक्ष वालों ने वहां पर कुछ लठैत बुलवा रखे हैं और तय किया है कि यदि आप दयानन्द को हम शास्त्रार्थ में पराजित न कर सके तो उन्हें इन लठैतों द्वारा मरवा दिया जाऐगा। ब्रह्मचारी को इस बात का पता चला तो वह घबराया हुआ कुटिया में आया और महर्षि जी के चरण पकड़कर कहने लगा कि भगवन्! आज आप शास्त्रार्थ करने न जाएं। महर्षि जी बोले कि ब्रह्मचारी ऐसे घबराए हुए क्यों हो, साफ-साफ बताओ। बलदेव ने कहा कि महाराज वहां पर विपक्षी लोगों ने गुण्डे और लठैत बुला रखे हैं तथा उन लोगों ने तय किया है कि यदि वे आपको शास्त्रार्थ में न भी हरा सके तो वे आपकी जीवन लीला समाप्त कर देंगे। राजा भी उन्हीं लोगों से मिला हुआ है। महर्षि जी ने कहा-'ब्रह्मचारी घबराते क्यों हो, एक मैं हूँ जीवात्मा, एक मेरा रक्षक है परमात्मा और धर्म मेरे साथ है इसलिए मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।' यह है वह शक्ति जो परमात्मा के उपासक को प्राप्त होती है। यही नहीं जब एक षडयन्त्र के तहत महर्षि जी को जोधपुर में ज़हर दे दिया गया तथा उस भयकर ज़हर से उनके पूरे शरीर पर छाले उभर आए तो भी मुस्कराते ही रहे। डाक्टरों ने कहा कि इन्हें इस समय इतना कष्ट हो रहा है कि साधारण व्यक्ति तो इस कष्ट से ही प्राण त्याग देता। महर्षि के चेहरे पर दुःख का नामोंनिशां तक नहीं..... अन्तिम समय में भी वे क्षौर करवाते

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

योग के प्रारम्भिक चरण-यम और नियम

21 जून को सम्पूर्ण विश्व के द्वारा योग दिवस मनाना इस बात का संकेत है कि भारत की संस्कृति को विश्व में मान्यता मिलने लगी है। योग वास्तव में उस पद्धति का नाम है जिसमें हम किसी के साथ जुड़ने का प्रयास करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का हर अध्याय योग से जुड़ा हुआ है। जिस अध्याय में कर्म की महत्ता का वर्णन है उसका नाम कर्मयोग है। इसी प्रकार भक्ति योग, ज्ञानयोग आदि नाम उस-उस अध्याय में वर्णित विषय के अनुसार दिए गए हैं। महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में योग के आठ अंगों को मान्यता प्रदान की है। यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि को योग के आठ अंग में स्वीकार किया गया है। वस्तुतः इन्हीं आठ अङ्गों में सभी अन्य भाव व साधनों का अन्तर्भाव हो जाता है। आज हमने केवल आसन, प्राणायाम और व्यायाम को ही योग मान लिया है किन्तु महर्षि के अनुसार इनका स्थान तीसरा और चौथा है। इससे पहले यम और नियम का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा नियम के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का आते हैं। जब तक मनुष्य इन यम और नियमों को अपने व्यवहारिक जीवन में नहीं अपनाता है, तब तक उसका आचरण शुद्ध नहीं होता है। आईये इन पांच यमों और पाँच नियमों पर विचार करें-

यम-1. अहिंसा- मन, वाणी और कर्म से प्राणी को कष्ट न पहुंचाना। केवल कष्ट न पहुंचाना अपितु उसकी भावना भी चित्त में नहीं आनी चाहिए। किसी के प्रति द्रोह, ईर्ष्या, असूया, आदि की भावना का चित्त में उभरना हिंसा में परिगणित होता है।

2. सत्य- मन, वाणी और कर्म से सत्य का आचरण करना। मन और वाणी समान हो, जो मन में विचारा, अनुमान किया या जैसा सुना है, दूसरे के सामने अपने भाव प्रकट करने के लिए वाणी से ठीक वही बात कहना। उसमें छल, प्रपञ्च या धोखा देने की भावना न होनी चाहिए।

3. अस्तेय- स्तेय चोरी को कहते हैं। उसका सर्वात्मना त्याग करना अस्तेय है। जिस द्रव्य पर किसी दूसरे का अधिकार है, उसको अवैधानिक रूप से कभी ग्रहण न करें, न ग्रहण करने की इच्छा करे। अन्य के द्रव्य के प्रति लालसा भी नहीं होनी चाहिए। लालसा उभरने पर आगे अन्य दोष-विकार उत्पन्न होकर स्तेय के रूप को धारण कर जाते हैं। इन सबका पूर्ण त्याग अस्तेय है।

4. ब्रह्मचर्य-कामवासनाओं से सर्वात्मना बचते हुए प्रयत्नपूर्वक वीर्य की रक्षा करना। जितेन्द्रिय रहना, इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति को उभरने न देना ब्रह्मचर्य है। यह पथ बड़ा दुर्गम होता है। पर पूर्ण संयमी इसको पार करने में सफल हो जाता है। **5. अपरिग्रह**- आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना अपरिग्रह है। अपरिग्रह का आंशिक प्रयोग सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से प्रत्येक सद्गृहस्थ को भी करना चाहिए।

पाँच नियम- 1. शौच- शौच पद का अर्थ शुद्धि अथवा पवित्रता है। इसके दो भेद हैं-बाह्य और आभ्यन्तर अथवा शारीरिक और मानसिक। जल आदि से शरीर, वस्त्र एवं अपने निवास स्थान आदि को शुद्ध-स्वच्छ रखना तथा शुद्ध आहार आदि का सेवन करना बाह्य शौच अथवा शुद्धि है। मन अर्थात् चित्त के मलों को चित्त में उभरने न देना, उभरने पर तत्काल उनको देर करने भुलाने का प्रयास करना आभ्यन्तर शौच है।

2. सन्तोष- जीवन निवाह के लिए जो अपेक्षित साधन अपने पास हैं, उन्हीं में सन्तुष्ट रहना, उन्हीं से अपना कार्य चलाना। लोभ आदि से प्रेरित होकर आवश्यकता से अधिक वस्तु संग्रह में कदापि प्रवृत्त न हो।

3. तप- तप भी दो प्रकार का समझना चाहिए। एक दैहिक, दूसरा चैत्तिक। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, लाभ-हानि, आदि द्वन्द्वों का सहना करना दैहिक तप हैं। स्मरण तथा प्रतिरोध भावना आदि से जो उद्वेग चित्त में उभरते हैं, उनको साहसपूर्वक दृढ़ता से सहन करना। उनके उभरने पर दु:खी न होना, उसे तपस्या समझ कर सहन कर जाना।

4. स्वाध्याय- प्रतिदिन अध्यात्म सम्बन्धी शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय करने से व्यक्ति का आत्मिक स्तर उन्नत होता है। अतः खाली समय में स्वाध्याय और चिन्तन करने का स्वभाव बनाएं।

5. ईश्वर प्रणिधान-परमात्मा में अपने को और अपने कार्यों को अर्पण कर देना। इस प्रकार के अनुष्ठान व ऐसी भावना से भगवान के प्रति भक्ति का उद्रेक जागृत होता है तथा बाह्य व्यवहार से चित्त हटा रहता है। सोते, जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते प्रत्येक अवस्था में स्वस्थ योगी प्रभुस्मरण से वितर्कजाल को विछिन्न करता हुआ, संसार में जन्म लेने के अविद्या आदि कारणों का विनाश देखता हुआ, जीवनमुक्त होकर देहत्याग के अनन्तर अमृतपद-मोक्ष का भागी हो जाता है। इसी भावना से सूत्रकार ने प्रणव-जप और उसके अर्थभाव का फल बतलाते हुए कहा है-इससे आत्मतत्व का साक्षात्कारतथा योगाभ्यास के अवसरों पर आने वाले विघ्न बाधा आदि का अभाव हो जाता है। ईश्वरप्रणिधान में यही बात है। परमात्मा में अपने आपको सर्वात्मना अर्पण कर प्रणवजप आदि का निरन्तर अनुष्ठान करता रहे।

ये यम और नियम योग के प्रारम्भिक चरण हैं। जो व्यक्ति यम और नियमों का तन्मयता से पालन करता है, उतना ही योग में गति करता है। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की गति इन्हीं यम-नियमों पर आधारित है। इसलिए योग के प्रत्येक जिज्ञासु को चाहिए कि यम-नियमों का पालन करते हुए अपनी आन्तरिक और बाह्य शुद्धि कर लें। प्रत्येक व्यक्ति का आचरण शुद्ध होना चाहिए, सत्य का जीवन में पालन करना चाहिए, लोभ का परित्याग करना चाहिए। यम और नियम योग के प्रारम्भिक चरण हैं।

योग को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिलने से वर्तमान में इसका महत्व और भी बढ़ गया है और भारतीय संस्कृति को विश्व में मान्यता मिल रही है। योग किसी व्यक्ति विशेष की पूंजी नहीं है, इसलिए इसका राजनीतिकरण नहीं किया जाना चाहिए। यह हमारे ऋषियों मुनियों द्वारा प्रदत्त शुद्ध पद्धति है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को स्वस्थ और नीरोग बना सकता है। पिछले तीन-चार वर्षों से 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जा रहा है। योग दिवस मनाने के कारण योग को विश्व में एक नई पहचान मिल रही है। परन्तु योग को हमें अपने जीवन का आवश्यक हिस्सा बनाना होगा। योग किसी एक दिन के लिए नियत वस्तु नहीं है। योग हमारी प्रतिदिन की जीवनचर्या का हिस्सा है। जैसे हम प्रतिदिन भोजन करते है, खाते हैं, पीते हैं। उसी प्रकार योग भी नियमित की जाने वाली क्रिया है। अगर हम अपने जीवन को तनावमुक्त बनाना चाहते हैं तो हमें योग को अपने जीवन की दिनचर्या में शामिल करना होगा। योग साधना के द्वारा, प्राणायाम के द्वारा हमारे ऋषि दीर्घायु को प्राप्त करते थे। योग करने से मानसिक तनाव कम होगा, शरीर निरोग होगा तथा मन में एक नई ऊर्जा का संचार होगा। इसीलिए हम सभी अगर स्वस्थ, मानसिक तनाव से रहित, निरोग और दीर्घायु जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें ऋषियों की पद्धति को अपनाना पड़ेगा। योग की पद्धति को अपनाकर ही एक स्वस्थ और सुन्दर राष्ट्र का निर्माण हो सकता है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

जीवात्मा के बाहर भीतर व्यापक परमात्मा को जानना मनुष्य का मुख्य कर्तव्य

ले.-मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2 देहरादून-248001

संसार में अनेक आश्चर्य हैं। कोई ताजमहल को आश्चर्य कहता है तो कोई लोगों को मरते हुए देख कर भी विचलित न होने और यह समझने कि वह कभी नहीं मरेगा, इस प्रकार के विचारों को आश्चर्य मानते हैं। हमें इनसे भी बड़ा आश्चर्य यह प्रतीत होता है कि मनुष्य स्वयं को यथार्थ रूप में जानता नहीं है। वह समझता है कि मैं एक शरीर हूं और इसका भरण व पोषण करना, इससे सुन्दर, स्वस्थ व आकर्षक बनाकर रखना ही उसके जीवन का उद्देश्य है। धनोपार्जन से मनुष्य को सभी प्रकार की सुख व सुविधायें प्राप्त होती हैं। अतः धनोपार्जन ही उसे मनुष्य के जीवन का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। यहां तक की आज के धर्मगुरु कहे जाने वाले भी नाना प्रकार के साधन अपनाकर धनोपार्जन में ही लगे हुए हैं।

उनकी सम्पत्ति का विवरण जाना जाये तो वह शायद भारत के बड़े-बड़े उद्योगपतियों से भी कहीं अधिक धनवान हैं। ऐसे मनुष्य आत्मा और परमात्मा की बातें करें तो वह विवेकशील मनुष्यों को उचित प्रतीत नहीं होती। हमारे सामने हमारे ऋषि-मुनियों व योगियों के आदर्श व अनुकरणीय जीवन हैं। इन ऋषि व योगियों में से कभी किसी ने अपने निजी सुख के लिए लोगों से सत्यासत्य का प्रयोग करते हुए धनैश्वर्य की कामना व मांग नहीं की।

आश्चर्य यह भी होता है कि धर्म व विवेक से सर्वथा अनभिज्ञ जिन्हें अज्ञानी, मूर्ख व भोला मनुष्य कह सकते हैं, ऐसे लोग धर्मगुरुओं की अनुचित बातों का शिकार हो कर अपना सब कुछ लुटा बैठते हैं और उन्हें यह अहसास तक भी नहीं होता कि उनसे क्या भूल या मूर्खता का काम हुआ है?

मनुष्य का जीवन मात्र शरीर नहीं अपितु इससे कहीं अधिक है। मनुष्य के भीतर एक चेतन तत्व जीवात्मा है जो अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अल्पज्ञ, जन्म व मरण के बन्धनों में बन्धा हुआ, सद्कर्मों व दुष्कर्मों को करने वाला व ईश्वर की व्यवस्था से वर्तमान व भावी जन्मों में उनके फलों का भोग करने वाला, ससीम, सुख व दुःखों का भोक्ता होने सहित अपनी विद्या को बढ़ाने वाला, वेद ज्ञान को प्राप्त होने में सक्षम व समर्थ तथा वेदानुसार ईश्वरोपासना कर ईश्वर का साक्षात्कार करने व मोक्ष प्राप्त करने में भी समर्थ है। इस जीवात्मा के अनादि काल से अनन्त बार जन्म हो चुके हैं और आगे भी इसी प्रकार से यह अपने कर्मों के अनुसार जन्म व मरण के बन्धनों में फंसा रहेगा। वेदों वा शास्त्रों में ज्ञान प्राप्ति व कर्म के फलों का भोग करने के बाद विवेक होने पर मोक्ष का विधान है परन्तु अनुमान से यह मोक्ष ऋषि, योगी व बहुत उच्च कोटि के वैदिक विद्वान व ईश्वरोपासक जो यम व नियमों को अपने जीवन में यथार्थ रूप में सेवन करते हैं, उनको प्राप्त होता है। ऐसे लोग संसार में देखने में या तो आते ही नहीं अथवा प्रायः सामान्य लोगों की दृष्टि से दूर ही रहते हैं।

अतः सामान्य व वेद ज्ञानविहीन लोगों की प्रवृत्तियों को देखकर यही अनुमान होता है कि सभी व अधिकांश लोगों का उनके इस जन्म व पूर्व के बिना भोगे हुए कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म होता रहेगा और वह कभी मनुष्य योनि व कभी पशु, पक्षी आदि नीच योनियों में जन्म लेकर अपने मनुष्य जीवन में किये हुए कर्मों का भोग करते रहेंगे। यह भी तथ्य है कि हम अपने इस जन्म से पूर्व जन्मों को अपनी अल्पज्ञता व शरीर परिवर्तन आदि के कारण भूल चुकें हैं जबकि परमात्मा को अनादि काल से अब तक के हमारे न केवल सभी जन्मों अपितु सभी कर्मों का भी निर्भ्रान्त ज्ञान है। परमात्मा कभी किसी जीवात्मा के किसी भी कर्म अथवा पूर्व की बातों को विस्मरण नहीं करता या उससे पूर्व की कोई बात कभी विस्मरित नहीं होती है।

हम उपर्युक्त सभी बातों, सिद्धान्तों व वैदिक मान्यताओं को अपने जीवन में भूले रहते हैं। हमारे धर्म गुरु व विद्वान भी हमें यह तथ्य बताना नहीं चाहते। वह भी प्रायः हमसे धन की अपेक्षा रखते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए इधर उधर की अनावश्यक बातें करके हमें खुश रखते हुए व जीवन की यथार्थ सच्चायियों से विमुख रखते हैं जिससे वह भी धन प्राप्त कर सुखों की प्राप्ति कर सकें। आर्य समाज व उसका वैदिक साहित्य ही हमें इन सत्य सिद्धान्तों व मान्यताओं से परिचित कराता है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से एक अन्य प्रमुख बात हमारे सम्मुख यह आती है कि इस संसार का रचयिता ईश्वर है। ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। वह हमारी आत्मा के भीतर व बाहर सर्वत्र समान रूप से एकरस व आनन्द से पूर्ण होकर विद्यमान है और हमारे प्रत्येक विचार व कर्म को, भले ही हम उस कर्म को दिन के उजाले में करें या फिर रात्रि के अन्धकार में छुप कर करें, पूर्णतया जानता है। वह कर्म फल प्रदाता है और यथासमय इस जन्म में व परजन्म में न्यायपूर्वक व अवश्यमेव उनका फल देता है। इस तथ्य को विस्मृत कर हम संसार में शुभ व पुण्य अथवा पाप व अशुभ दोनों प्रकार के कर्म किया करते हैं। पुण्य कर्मों से हमें सुख प्राप्त होता है और पाप कर्म हमारे जन्म जन्मान्तरों में दुःख का कारण बनते हैं। इन दुःखों से बचने के लिए ही परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में हमें वेद ज्ञान दिया था जिससे हम कर्म के स्वरूप व उसके महत्व को समझ सकें और पाप कर्मों से बचकर अपने जीवन की दुःखों से रक्षा कर सकें। परन्तु देखा यह गया है कि बड़े बड़े विद्वान भी पाप करने से पूर्णतया बच नहीं पाते। बड़े बड़े विद्वान व धर्माचार्यों में पूर्ण विद्या नहीं होती। उनमें भी कम व अधिक अविद्या व उसके संस्कार उनके चित्त में होते हैं। उनका नाश व निर्बीज होना तो समाधि प्राप्त कर विवेक की प्राप्ति होने पर ही होता है। अतः विद्वानों से भी अशुभ कर्म व अपराध हो जाते हैं जिसका परिणाम दुःख होता है।

आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द जी एक आदर्श पुरुष हुए हैं। उन्होंने न केवल योग विद्या को सिद्ध किया, उसे अपने आचरण व जीवन में धारण किया अपितु उन्होंने विद्या प्राप्त कर उसका अभ्यास करते हुए वेदों का यथार्थ ज्ञान भी प्राप्त किया था। वह कर्म व कर्म फल को वेदादि शास्त्रों से यथावत् जान पाये थे और उसे जानकर उन्होंने अशुभ व पाप कर्मों का सर्वथा त्याग भी किया था। वेद, वैदिक साहित्य सहित ऋषि दयानन्द जी का जीवन सभी मनुष्यों के लिए एक आदर्श उदाहरण हैं जिसको अपनाकर हम अपनी विद्या बढ़ाकर सन्मार्ग का अवलम्बन कर सकते हैं। इससे हमें भी लाभ होगा और हमारे सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी लाभ होगा। यह जीवन बहुत लम्बा नहीं है। यदि हम अपनी एक सौ वर्ष की आयु की कल्पना करें तो हमारे आरम्भ के 25 वर्ष तो बाल व युवा काल जिसमें हम अध्ययन आदि करतें हैं व्यतीत हो जाते हैं। बाद के 75 वर्षों में 25 वर्ष व कुछ अधिक वर्ष हम गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हैं। इन 25 वर्षों में न्यूनतम एक चौथाई अर्थात् 6 वर्ष से अधिक का समय तो हमारे सोने में ही व्यतीत हो जाता है। आजीविका के कामों में भी हमें प्रतिदिन 8 से 12 घंटे देने पड़ते हैं। यदि औसत 10 घंटे भी माने तो 25 वर्षों में 10 से 11 वर्ष हमारे आजीविका के कार्यों में व्यतीत हो जाते हैं। इस प्रकार लगभग 25 वर्ष में से 16-17 निकल जाने पर हमारे पास 8-9 वर्ष ही बचते हैं। हमारा यह समय भी स्वास्थ्य रक्षा सहित अनेक सामाजिक, धार्मिक आदि अनेक कार्यों को करने में व्यतीत होता है। अतः हमें गृहस्थ जीवन में सुख भोगने के लिए बहुत अधिक समय नहीं मिलता। वानप्रस्थ व संन्यास के 25-25 वर्ष तो साधना व धर्म प्रचार के लिए होते हैं। इसमें जो मनुष्य सुख भोगेगा वह एक प्रकार से अपने परजन्म को किसी न किसी रूप में बिगाड़ता है।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि हम जितना अधिक सुख भोगेंगे उतना अधिक हमारी इन्द्रियां व शरीर के अवयव कमजोर व निर्बल होते जाते हैं जो आगे चलकर रोग व आयुनाश का कारण बनते हैं। अतः ईश्वरोपासना एवं यज्ञ प्रधान वैदिक धर्म व संस्कृति ही सर्वोत्तम साधन है जिसका अनुसरण कर मनुष्य अपने इस जीवन को शारीरिक बल की हानि व रोगों से बचाकर अपने परजन्म को भी सुधारता है। अतः हमें वेदों के मार्ग पर ही चलना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के सप्तमसमुल्लास में बृहदारण्यक उपनिषद का वचन देकर उसका हिन्दी अनुवाद किया है। उसमें महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी-अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्मा में विद्यमान ईश्वर को जानने की प्रेरणा कर रहे हैं। उपनिषद का वचन है 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।

आत्मनोऽन्तरो यमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः।'

इसका अर्थ करते हुए ऋषि

(शेष पृष्ठ 7 पर)

शासक पुरुषार्थी तथा सत्यवादी हो

ले.-डॉ. अशोक आर्य १०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी २०१०१० गाजियाबाद

पुरोहित वास्तव में प्रजा का प्रतिनिधित्व करते हुए राजा को उसके पद की अथवा गोपनीयता की मानो शपथ दिलाते हुए राजा के गुणों का गान करते हुए कहता है कि जिस प्रकार गोपथ ब्राह्मण के उ. ६.३ तथा जैसे शतपथ ब्राह्मण के ६.२.२.५ में स्पष्ट किया गया है, वैसे ही राजा का सुख स्वरूप अर्थात् सब सुखों के देने हारा होने वाला होना चाहिए। यजुर्वेद का यह मन्त्र भी कुछ इस प्रकार का ही उपदेश करते हुए कह रहा है कि :

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा। सुश्लोक सुमंगल सत्यराजन्।। यजुर्वेद २०४.।।

राजा प्रजा को पुत्र के समान माने पुरोहित राजा का राजतिलक करते हुए कहता है कि हे राजन्! प्रजा का सच्चा हितैषी होने के कारण तू सुख स्वरूप है। सब प्रकार के सुखों को देने वाला है। जब तू प्रजा के सुखों को बढ़ाता है तो प्रजा अत्यंत प्रसन्न हो कर तुझे चिरंजीवी होने का आशीर्वाद देती है। तू केवल सुखकारी ही नहीं है अपितु अत्यंत सुखकारी है। अत्यंत सुख किस प्रकार मिलते हैं? अत्यंत सुख किसी भी प्रजा को उस समय मिलते है, जब राजा प्रजा को अपने पुत्र के समान समझते हुए, उसकी देख रेख करे। राजा न केवल देश के अन्दर के संसाधनों का प्रयोग करते हुए जन-जन के सुखों की, जन जन के लिए खाद्य पदार्थों की, जन-जन के लिए धनधान्य की व्यवस्था करे बल्कि वह प्रजा की विदेशी शत्रुओं से भी रक्षा करेगा तो प्रजा अत्यंत खुशहाल, धनधान्य से संपन्न व अत्यंत सुखी हो जाती है। जिस राजा की प्रजा अत्यंत सुखों का अनुभव करती है, वह राजा दीर्घ जीवी होता है। वह राजा लम्बे समय तक राज्य का सुख भोगते हुए निरंतर राज्य को उन्नति के शीर्ष पर ले जाते हुए प्रजा के मनों को जीतता है तथा सब प्रकार की उन्नति का कारण बनता है।

राजा प्रभु का प्रतिनिधि व सुख-स्वरूप हो परमपिता परमात्मा को सुख स्वरूप कहा गया है अर्थात् परमपिता परमात्मा सब प्रकार के सुखों की वर्षा करने वाले हैं। हे राजन्! तुझे प्रजा ने अपना प्रतिनिधि चुना है इस के साथ ही साथ तू परमपिता परमात्मा का भी प्रतिनिधि स्वरूप बनकर, परमपिता के गुणों को अपने में धारण कर। वह परमात्मा जिस प्रकार प्राणी मात्र के लिए सुख स्वरूप है, उस प्रकार तू भी सब प्रजा के लिए सुख स्वरूप बन, प्रजा के सुखों को बढ़ाने वाला बन। तेरा सुख स्वरूप बनना ही तेरे लिए यश और कीर्ति को बढ़ाने वाला होगा। जब तू अपनी प्रजा के सुखों को बढ़ाता है तो तेरी प्रजा कभी तेरे विरुद्ध खड़ी नहीं होती, कभी तेरे से विद्रोह नहीं करती, सब ओर शान्ति ही शान्ति स्थापित हो जाती है। इस प्रकार के राज्य के राजा के सामने कभी कोई संकट नहीं आता, कभी कोई दु:ख कलेश नहीं आता। इस प्रकार जो धन कष्टों को, रोगों को दूर करने के लिए नष्ट करना था, वह धन बच जाता है और यह बचा हुआ धन राज्य के विकास के लिए काम आता है, सुख के साधनों को बढ़ाने के काम आता है। इससे राज्य तीव्र गति से उन्नति करता है। राज्य की यह उन्नति प्रजा को अत्यधिक सुख देने का कारण बनती है। इससे ही राजा चिरंजीवी होता है। अत: पुरोहित उपदेश कर रहा है कि हे राजन्! उस सुख स्वरूप परमेश्वर के आदेशों का पालन करने के लिए प्रजा ने तुझे चुना है और इस कारण ही प्रजा के हितों की रक्षा के लिए आज मैं तेरा राज्याभिषेक कर रहा हूँ। इस सत्ता को पाकर आपने सदा जनहित का ध्यान रख कर ही प्रत्येक कार्य करना है।

राजा शुभकीर्ति से युक्त हो

हे राजा! तू शुभ कीर्ति वाला बन। कीर्ति अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी हो सकती है। मन्त्र राजा को केवल कीर्ति युक्त होने की प्रेरणा नहीं दे रहा अपितु शुभ कीर्ति की प्रेरणा दे रहा है। मन्त्र कहता है तेरी कीर्ति में तेरी निरंकुशता न दिखाई दे। तेरी कीर्ति तेरी क्रूरता के कारण न हो अपितु तेरी कीर्ति का कारण तेरी सुकीर्ति हो, तेरे अच्छे काम हों, तेरे जन हितैषी कार्य हों। इसलिए तू सदा अच्छे काम कर, जन हित के काम कर, जिससे प्रजा का हित हो इस प्रकार के कार्य कर। इस प्रकार के कार्यों से ही तेरी सुकीर्ति होगी। सर्वत्र तेरे उत्तम गुणों की चर्चा होगी। इससे ही तू प्रजा के हृदयों का सम्राट बनेगा। तेरे यश व कीर्ति के गुणों का गान सर्वत्र होगा।

राजा सत्यवाणी से युक्त हो, इसके साथ ही साथ हे राजन्! सत्यवाणी वाला भी बन कर रहना। अपने किसी भी कार्य में सत्य को कभी न छोड़ना। जो कहना वही करना। कहीं ऐसा न हो कि जनता को छलने के कार्य करने के लिए सत्य को ही त्याग दे। कहे तो कुछ किन्तु करे कुछ, इस प्रकार की इच्छा कभी मत करना। इस प्रकार के कार्यों से जनता विरोधी बन जाती है। जिसने भी किसी प्रकार के मंगल का करना होता है, उसे सत्य का ही आश्रय लेना होता है, सत्य को ही साधन बनाना होता है। इसके बिना कभी किसी प्रकार का मंगल कार्य नहीं किया जा सकता। यदि राजा जन कल्याण की घोषणाएं तो बड़ी बड़ी कर दे किन्तु करे कुछ भी न अथवा उसके उल्ट करे तो यह राजा का भयंकर झूठ, उसके लिए भयंकर गलती सिद्ध होता है। जब राजा ने प्रजा से कुछ उत्तम करने का आश्वासन दिया है किन्तु उस आश्वासन को पूरा करने के लिए करता कुछ भी नहीं तो निश्चय ही प्रजा उसके विरोध में आ खड़ी होती है तथा उसे पदच्युत करने के प्रयास करने लगती है, उस राजा के विरोध में खड़ी हो जाती है तथा तब तक विरोध करती रहती है, जब तक उस राजा का समूल नाश न हो जावे। इसलिए मन्त्र के माध्यम से पुरोहित राजा का राज तिलक करते हुए राजा को उपदेश कर रहा है कि वह शुभकीर्ति पाने के लिए सदा सत्यवाणी का ही प्रयोग करे न कि केवल ताली पिटवाने के लिए झूठे वायदे करे तथा उन वायदों को कभी पूरा करने की सोचे तक भी नहीं।

इस प्रकार हे राजन्! तू जनता के हित के लिए सत्य का प्रकाशक बन। जो कह, वह सत्य कह, जो कर, वह भी सत्य कर तू इस प्रकार का सत्य प्रकाशक बन कि प्रजा तेरी प्रत्येक बात को, तेरे प्रत्येक कर्म को सत्य स्वीकार करे। तेरे प्रत्येक सत्य को पूर्ण करने के लिए प्रजा सदा तेरे आदेशों का पालन करते हुए उसे पूर्ण करने में दिन-रात लगा देवे।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

आर्य मर्यादा साप्ताहिक पढ़ें और दूसरों को पढ़ाएं तथा लाभ उठाएं।

वेदवाणी द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश हुआ है-ऋग्वेद

ले०-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

जब सृष्टि का आरम्भ हुआ तब मनुष्य ज्ञान शून्य था। वाणी का प्रयोग भी उसे करना नहीं आता था। वह निरा पशु के समान था फिर ज्ञान का विकास कैसे हुआ? इस पर कुछ लोगों का कहना है कि मनुष्य ने स्वाभाविक ज्ञान से ही विकास करके वर्तमान स्थिति तक की यात्रा की है। यदि इसे सत्य मान लिया जाए तो फिर भारत के ही कुछ भागों में जैसे अंडमान, निकोबार, छत्तीसगढ़ आदि में आदिवासियों का विकास क्यों नहीं हुआ? इसी तरह अफ्रीका के कई प्रदेशों में भी नीग्रो लोग वर्तमान सभ्यता से दूरी क्यों बनाए हुए हैं। सत्य बात तो यह है कि अर्जित ज्ञान से ही व्यक्ति का विकास होता है। क्या मार्कोनी ने स्वाभाविक ज्ञान से ही बेतार कर तार बना लिया था? क्या उसने हर्टज तरंगों के विषय में पढ़कर ही बेतार का तार नहीं बनाया था? क्या आइन्स्टीन ने बिना किसी अध्ययन के ही स्वाभाविक ज्ञान से सापेक्षता का सिद्धान्त बना लिया था? वास्तव में पहले ज्ञानार्जन करना होता है उसके बाद उसका प्रचार-प्रसार और विकास किया जाता है। वैदिक ऋषियों का यह मानना है कि आदि सृष्टि में परमात्मा ने कुछ चुने हुए ऋषियों के मस्तिष्क में ज्ञान का आधान किया। उन्हें भाषा का ज्ञान भी दिया। फिर उन ऋषियों ने उसका प्रचार-प्रसार किया। जो-जो जातियां उनके सम्पर्क आती गई वे ज्ञान पाने में सफल रही। उन्होंने ही फिर उस ज्ञान का प्रचार-प्रसार और विकास किया। जो मनुष्य जाति उनके सम्पर्क में नहीं आई वह आज भी अज्ञान अंधकार में निमग्न है। वेद में इस विषय पर पर्याप्त चर्चा हुई है। हम इस लेख में ऋग्वेद के आधार पर इस विषय पर अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं।

ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 71 के मंत्र-1 में कहा गया है-

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदे षांनिहितम् गुहाविः।।

अर्थ-(हे बृहस्पते) हे बड़ी वाणी के स्वामी। (नामधेयं दधानाः) वस्तुओं के नामों को धारण करते हुए ऋषि (यत्) जो (प्रथमम् वाचः) प्रथम वाणियों को (अग्रे) आगे सृष्टि के आदि में (प्रेरत) प्रेरणा करते हैं। (यत्) वा (एषाम्) इनका (श्रेष्ठम्) उत्तम (अरिप्रम्) पाप रहित वचन (आसीत्) था वह (गुहा निहितम्) गूढ़बुद्धि में रखा था। (तत्) वह (एषाम्) इनके (प्रेरणा) प्रेम से (आविः) प्रकट हुआ।

भावार्थ-आदि सृष्टि में परमात्मा ने निष्पाप ऋषियों की बुद्धि में वेद-वाणियां प्रेरित की। वेद के शब्दों से ही ऋषियों ने जगत् के पदार्थों के नाम रखे और प्रेम से उस वाणी का प्रचार अन्य मनुष्यों में किया। वह वेद की आदि वाणी श्रेष्ठ और निर्दोष थी। आधुनिक भाषा विज्ञानिकों का मानना है कि आदि सृष्टि में मनुष्य ने जड़ वस्तुओं द्वारा होने वाले शब्दों से वाणी सीखी, फिर धीरे-धीरे वाणी का विकास हुआ। परन्तु जड़ वस्तुओं में अक्षरमय शब्द नहीं होते हैं। अक्षरमयीं वाणी मनुष्य ने कैसे सीखी इसका संतोष जनक उत्तर उनके पास नहीं है।

आदि सृष्टि में फिर वेद वाणी का प्रचार-प्रसार द्वारा हुआ बलात् नहीं।

सूक्त की दूसरी ऋचा में इसी पर विचार किया गया है।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।
ऋ. 10.71.2

अर्थ-(तितउना) छलनी से (सक्तुम् इव) सत्तुओं को जैसे (मनसा) विचार से (वाचम् पुनन्तः) वाणी को पवित्र करते हुए (धीराः) बुद्धिमान् (मनसा) मन से (यत्र) जहां जिस काल में (वाचम् अक्रत्) वाणी में काव्य रचना करते हैं। (अत्र) यहां इस समय (सखायः) उनके समज्ञानी मित्र (सख्यानि) मित्र भावों को (आ जानते) जान लेते हैं। (एषाम् अधिवाचि) इसकी साधिकार वाणी में (भद्रालक्ष्मीः) कल्याणमयी शोभा (निहिता) रहती है।

भावार्थ-वेद वाणी का प्रचार विचार द्वारा हुआ, बलात् नहीं हुआ है। वेदवाणी में सभी के लिए मित्रता का भाव है। चूंकि वेद वाणी में सभी के लिए प्रेम और हित की बात है इसलिए लोगों ने ग्रहण कर लिया। इस वाणी में सभी के लिए कल्याण और ऐश्वर्य है।

वेद वाणी सात छन्दों में है। इसे ऋषियों ने लोगों को सिखाया। फिर ऋषियों से सीखकर इसका प्रचार किया गया।

यज्ञेन वाचः पदवीयमा-यन्तामन्वविन्दि न्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरूत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते।।
ऋ. 10.71.3

अर्थ-ज्ञानी लोगों ने (यज्ञेन) परस्पर संगति से विचार से (वाचः पदवीयम्) वाणी के पदार्थ को (आयत्) प्राप्त किया। (ऋषिषु प्रविष्टाम्) जो वाणी ईश्वर द्वारा ऋषियों में प्रविष्ट हुई थी उसे (अन्वविन्दन्) जान लिया और प्राप्त कर लिया। (ताम् आभृत्य) उसे धारण करके (पुरूत्रा) बहुत प्रकार से (व्यदधुः) अन्यों को धारण कराया (ताम्) उस वाणी को (सप्तरेभाः) सात छन्द (अभि संनवन्ते) भली-भांति प्रकट करते हैं।

भावार्थ-ज्ञानी लोगों ने परस्पर संगति से, विचार से वाणी के पदार्थ को प्राप्त किया। यह वाणी ईश्वर द्वारा ऋषियों को प्रदान की गई थी। उसे लोगों ने जान लिया, प्राप्त कर लिया। उस वेद वाणी को धारण करके बहुत प्रकार से अन्यों को धारण कराया। वेद वाणी सात छन्दों में प्रकट हुई है। जो लोग वाणी को ठीक से समझ लेते हैं उन्हें उसमें वाणी का रस प्राप्त होता है। इस विचारधारा पर वेद का कथन है-

उत त्वःपश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वःश्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि ससे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।
ऋ. 10.71.4

अर्थ-(उत त्वः) और भी है कि (वाचम् पश्यन् न ददर्श) वाणी को जानते हुए भी नहीं जानते (उत त्वः) और (शृण्वन्) सुनता हुआ भी (एनाम् न श्रृणोति) इसको नहीं सुनते हैं अनेक लोग पढ़-लिख कर भी मूर्ख बने रहते हैं (उतः तु) और (अस्मै) बुद्धिमान के लिए (तन्वं विससे) शरीर खोल देती है (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों वाली (उशती) कामना करती हुई (जाया) पत्नी (पत्ये इव) जैसे पति के लिए।

भावार्थ-कुछ लोग पढ़-लिखकर भी वाणी के मर्म को नहीं जान पाते हैं। वेद वाणी को सुनते हुए समझ नहीं पाते हैं। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति के लिए वाणी अपने रहस्य को इस प्रकार प्रकट कर देती है जैसे कि सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुई नारी अपने पति के लिए वस्त्रों को खोल देती है।

ज्ञान को ठीक से समझ कर काम में परिणत करना चाहिए।

उत त्वै सख्ये स्थिर पीतमाहुर्नैनं हित्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्।।
ऋ. 10.71.5

अर्थ-(उत त्वं) और (सख्ये) मित्रता में (एनम् स्थिर पीतम्) इस जन को जिसने वाणी को समझा है स्थिर ज्ञान रखने वाला कहते हैं। (वाजिनेषु) ज्ञानों में, यज्ञों में (अपि) भी (एनम् न हिन्वन्ति) अन्य जन उसको नहीं पाते हैं, उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। (एषः) वह मनुष्य (मायया) माया से धोखे में (अधेन्वा चरति) बिना दूध वाली गाय के साथ (चरति) विचर रहा है। जिसने (अफलाम् अपुष्पापम्) बिना फल-फूल की अर्थात् न तो समझी और न काम में लाई (वाचम्) वाणी को (शुश्रुवान्) सुना।

भावार्थ-जिसने वेद वाणी को ठीक प्रकार से समझ लिया है उसे स्थिर ज्ञानी कहते हैं। ज्ञान में, अथवा यज्ञ में दूसरे व्यक्ति उसके समान नहीं हो सकते हैं। अज्ञानी पुरूष न वेद वाणी को समझ पाया है और न ही उसे अपने आचरण में स्थान दे सका है।

अगली ऋचा में कहा गया है कि सभी व्यक्ति एक समान विद्वान् नहीं होते हैं। सब मनुष्यों को बराबर मानना मूर्खता है।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदध्नास उप कक्षास उत्वे ह्रदाइव स्नात्वां उ त्वे ददृशे।।
ऋ. 10.71.7

अर्थ-(अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखाया) आंखों वाले और कानों वाले मित्र, समान इन्द्रियों वाले (मनोजवेषु) मन की गतियों में, विचार शक्ति में (असमाः बभूवुः) समान नहीं है। (आदध्नासः) कुछ के घुटनों तक जल है, (उपक क्षासः) कुछ के कोखों तक जल है, (उत्वे ह्रदाइव स्नात्वा) दूसरों ने तालाब में स्नान किया है (उत्व ददृशे) दूसरों ने वाणी को देखा है, साक्षात् किया है।

भावार्थ-आंखों वाले, कानों वाले, समान इन्द्रियों वाले भी मन की गतियों में, विचार शक्ति में समान नहीं होते हैं।

अब एक ऋचा पर और विचार

(शेष पृष्ठ 7 पर)

पृष्ठ 2 का शेष-प्रभो! हमें निर्भय कर दो!

हैं, गायत्री मन्त्र तथा अन्य मन्त्रों का उच्चारण करते हैं और यह कहते हुए प्राण त्याग देते हैं कि प्रभु तूने अच्छी लीला रचाई, तेरी इच्छा पूर्ण हो.... प्रभु के इस परम आस्तिक भक्त को इस धैर्य और साहस के साथ मृत्यु का वरण करते हुए देखकर वहां उपस्थित अस्थिरचित्त गुरूदत्त भी सच्चा आस्तिक बन गया था। इसीलिए महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं कि उपासना से-'आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबराऐगा, और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है?' इसलिए परमात्मा की प्रार्थना एवं उपासना से व्यक्ति के भीतर आत्मिक बल प्राप्त होता है तथा वह निर्भय हो जाता है और जीवन में बड़े से बड़ा संकट आने पर भी घबराता नहीं है।

परमात्मा से सदा निर्भयता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए मगर केवल प्रार्थना करना ही पर्याप्त नहीं है। महर्षि दयानन्द जी 'आर्योद्देश्य-रत्नमाला' में लिखते हैं-'अपने पूर्ण पुरूषार्थ के उपरान्त, उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य का सहाय लेने को 'प्रार्थना' कहते हैं। 'सत्यार्थप्रकाश' 1/4 सप्तम समुल्लास1/2 में महर्षि जी बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक उपदेश देते हुए कहते हैं-'देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी हैं अथवा अप्राणी, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते, और वृक्षादि सदा बढ़ते-घटते रहते हैं, वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरूषार्थ करते हुए पुरूष का सहाय दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरूषार्थी पुरूष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरूष को भृत्य करते हैं 1/4 अर्थात् रखते हैं1/2, और अन्य आलसी को नहीं। देखने की इच्छा करने और नेत्र वाले को दिखलाते हैं, अन्धे को नहीं। इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता हैं, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई 'गुड़ मीठा है' ऐसा कहता ही है, उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है, उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।' महर्षि अन्यत्र लिखते हैं-'सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही अपना आचरण करना चाहिए..... जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरूषार्थ भी करना चाहिए। यजु० ३-२६1/2' वास्तव में प्रार्थना तो अपने भीतर एक आत्मविश्वास और उत्साह प्राप्त करने के लिए की जाती है और इसके लिए पूर्ण श्रद्धा व समर्पण की जरूरत होती है। समर्पण के लिए व्यक्ति को अंहकार रहित होना भी अनिवार्य है। असल में हर कोई छोटा व्यक्ति किसी बड़े की सहायता चाहता ही है और यह एक स्वाभाविक कामना है। हम किसी न किसी समर्थ एवं शक्तिशाली की सहायता में ही अपने आप को सुरक्षित अनुभव कर पाते हैं, और सही ढंग से की गई प्रार्थना से व्यक्ति को यह उपलब्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार कर्मशीलता की भावना से भरी, अंहकाररहित, श्रद्धा, समर्पण और हृदय से निकली हुई प्रार्थना निश्चितरूप से सफलीभूत होती है। ऋ० भा० भू० में महर्षि लिखते हैं-'इस प्रकार से जो मनुष्य अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है, उसके लिए परमकारूणिक परमात्मा सब सुख देता है, इसमें सन्देह नहीं।'

पृष्ठ 6 का शेष-वेद वाणी द्वारा ही ज्ञान...

कर विषय को विराम देते हैं।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।।

ब्रह्मा त्वो वदति जात विद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः।।

ऋ. 10.71.11

अर्थ-(त्वः) कोई विद्वान् (ऋचाम्) वेद मंत्रों के (पोषम् पुपुष्वात्) पोषण को पुष्ट करता हुआ (आस्ते) रहता है। (त्वः) कोई (शक्वरीषु) शक्वरी नामक ऋचाओं में (गायत्रं गायति) गाने योग्य मंत्रों को गाता है (सामवेद) (त्वः) कोई (ब्रह्मा) यज्ञ का ब्रह्मा, अथर्ववेद का ज्ञाता, जात विद्यांऽशिल्प विद्या को (वदति) कहता है (उत्वः) और कोई (यज्ञस्य मात्रां) यज्ञ की विधि को (विमिमीत) विशेष रीति से बताता है। यजुर्वेद

भावार्थ-मंत्र में चारों वेदों के विभाग को बताया गया है। होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा के कार्यों का संकेत भी इस ऋचा में है।

संस्कृत-भाषा

संस्कारों का सर्वोत्तम भण्डार है संस्कृत,
हमारी नैतिकता का मूलाधार है संस्कृत,
सदाचार-सद्गुणों का प्रसार है संस्कृत,
वेदों-उपनिषदों का श्रृंगार है संस्कृत।
सब भाषाओं की पालनहार है संस्कृत,
भारतीय जीवन का आधार है संस्कृत,
मानव मूल्यों में सदाचार है संस्कृत,
विश्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान का सार है संस्कृत।
मानव के लिए माँ का प्यार है संस्कृत,
ईश्वर द्वारा दिया गया उपहार है संस्कृत,
बच्चों के लिए बड़ों का दुलार है संस्कृत,
साहित्य सृजन का पूर्ण संसार है संस्कृत।
ईश्वर को ऋषियों का आभार है संस्कृत,
वेदवाणी, ब्रह्मज्ञान का ही प्रसार है संस्कृत,
भारतवासियों के लिए शिष्टाचार है संस्कृत,
हर श्रोता का भी करती उपकार है संस्कृत।
प्रबुद्धजनों के लिए गंगा की धार है संस्कृत,
जड़मति के लिए तो केवल भार है संस्कृत,
आधुनिकता की दौड़ में लाचार है संस्कृत,
कम पढ़ने वाले? क्या बीमार है संस्कृत।
वेद-वेदांग, श्रुति-स्मृति पूरा परिवार है संस्कृत,
उपनिषद् पुराण भी करते अंगीकार है संस्कृत,
दुर्जन-दुरावारी का भी करती उद्धार है संस्कृत,
श्रद्धावान् का करती सत्कार है संस्कृत।
नैतिकता सद्गुणों का प्रचार है संस्कृत,
मानव कल्याण हेतु पतवार है संस्कृत,
गीता में ईश्वर का अवतार है संस्कृत,
सनातन धर्म रूप साकार है संस्कृत।
वाणी का सुन्दर श्रृंगार है संस्कृत,
सरस्वती का कण्ठहार है संस्कृत,
दुष्कर्मों का कुल संहार है संस्कृत,
ब्रह्म का साक्षात्कार है संस्कृत।
आयुर्वेद के माध्यम से उपचार है संस्कृत,
सूत्र पढ़ो तो भाषा में सुधार है संस्कृत,
व्याकरण से हिन्दी पर अधिकार है संस्कृत,
कर्मकाण्ड, ज्योतिष में रोजगार है संस्कृत।

प्रिंसीपल डा.-निर्मल कौशिक-163, आदर्श नगर ओल्ड कैंट रोड, फरीदकोट

पृष्ठ 4 का शेष-जीवात्मा के बाहर भीतर व्यापक...

दयानन्द लिखते हैं 'महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि हे मैत्रेयि! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जीवात्मा से भिन्न है, जिस को मूढ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में (मेरी आत्मा में) व्यापक है, जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है वैसे ही जीव में परमेश्वर व्यापक है। जीवात्मा से भिन्न रहकर (परमात्मा) जीव के पाप पुण्यों का साक्षी होकर उनके फल जीवों को देकर नियम में रखता है वही अविनाशीस्वरूप (परमात्मा) तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है, उस (अपनी आत्मा और परमात्मा) को तू जान।'

हम यदि अपनी आत्मा और परमात्मा को यथार्थरूप में जान लेंगे तो हमें अपने जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य सहित अपने साधनों का भी ज्ञान हो जायेगा और तब हम अपनी आत्मा के प्रति न्यायपूर्वक सत्य व्यवहार कर उसकी उन्नति कर सकते हैं। सांसारिक सुखों में पड़कर हम अपनी आत्मा को निर्बल करते हैं जिसका परिणाम परजन्म में उन्नति न होकर अवनति होता है। पशु, पक्षियों व स्थावर योनियों के उदाहरण हमारे सामने हैं। वेद और सत्यार्थप्रकाश पढ़कर हम जीवन जीने की सही दिशा प्रास कर सकते हैं और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक कर सकते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी

श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल अधिष्ठाता साहित्य विभाग द्वारा प्रसिद्ध विद्वानों के सहयोग से तैयार प्रश्नोत्तरी। आशा है आर्य मर्यादा के पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

गतांक से आगे

प्र.31-मूलशंकर ने रात्रि में क्या कौतुक देखा?

उत्तर- शिवलिंग पर चढ़े चढ़ावे को चूहे खा रहे थे तथा उसके उपर मल-मूत्र विसर्जित कर रहे थे।

प्र. 32-चूहे को शिवलिंग पर देखकर मूलशंकर के मन में क्या शंका हुई?

उत्तर- यह सच्चा शिव नहीं हो सकता।

प्र. 33-पिता के यह कहने पर कि यह तो शिव का प्रतीक है यह कहने पर मूलशंकर ने मन में क्या संकल्प किया।

उत्तर- मैं तो सच्चे शिव को प्राप्त करूंगा।

प्र.34-शिव की पूजा न करने का मूलशंकर ने पिता जी के सामने क्या कारण रखा?

उत्तर-पढ़ने से समय नहीं मिल पाता इसलिए शिव पूजन नहीं करता।

प्र.35-वैराग्य का बीज मूलशंकर के हृदय में कब उठा?

उत्तर-छोटी बहन और चाचा जी की मृत्यु के पश्चात।

प्र.36-बहन की मृत्यु के समय मूलशंकर की आयु क्या थी?

उत्तर-16 वर्ष थी।

प्र. 37-मूलशंकर की बहन की मृत्यु किस रोग के कारण हुई थी?

उत्तर-हैजा के कारण।

प्र.38-बहन की मृत्यु के समय मूल के मन में क्या विचार आया?

उत्तर-क्या मैं भी मर जाऊंगा।

प्र.39- चाचा की मृत्यु के समय मूलशंकर की आयु क्या थी?

उत्तर- 19 वर्ष।

प्र.40-चाचा और बहन की मृत्यु के बाद मूलशंकर के मन में क्या विचार उठा?

उत्तर-दु:ख और मृत्यु से छूटने का विचार उठा।

प्र.41-मूलशंकर ने विवाह न करने की बात किससे कही?

उत्तर अपने मित्रों से।

प्र.42-जब माता-पिता को मित्रों द्वारा मूल की इच्छा का पता चला तो वे क्या करने की सोचने लगे?

उत्तर-मूलशंकर का विवाह करने की सोचने लगे।

प्र.43-किससे कह कर मूलशंकर ने 20वें वर्ष में विवाह रूकवाया?

उत्तर-मित्रों से कहकर।

प्र.44-बीस वर्ष की आयु होने पर मूलशंकर ने क्या इच्छा प्रकट की?

उत्तर- काशी में पढ़ने की।

प्र.45-क्या मूलशंकर काशी में पढ़ने गया?

उत्तर-नहीं।

प्र.46-मूलशंकर को काशी पढ़ने क्यों नहीं भेजा गया?

उत्तर-माता-पिता 21वें वर्ष में विवाह करवाना चाहते थे।

प्र.47-जब माता पिता ने मूलशंकर का विवाह निश्चित कर दिया तो मूलशंकर ने क्या किया।

उत्तर-गृह त्याग कर दिया।

प्र.48- घर छोड़ने के समय मूलशंकर की आयु क्या थी?

उत्तर-22 वर्ष

प्र.49-मार्ग में मूलशंकर की अंगूठी तथा रूपये किसने ठग लिए?

उत्तर-ढ़ोगी साधुओं ने।

प्र.50-मूलशंकर को किस ग्राम में ब्रह्मचारी मिले?

उत्तर- सायले नामक ग्राम में।

प्र.51-ब्रह्मचारी की प्रेरणा से मूलशंकर क्या बन गए।

उत्तर-नैष्ठिक ब्रह्मचारी।

प्र.52-नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनने से मूलशंकर का नाम क्या हो गया था?

उत्तर-शुद्ध चैतन्य।

वेदवाणी

यज्ञ कर्म करो

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्णयाः।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा।।

-ऋ. २।३५।१

ऋषि:-**अङ्गिराः**।। देवता-**विश्वकर्मा**।। छन्द:-**बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्**।।

विनय-इस संसार में भोगों को भोगने के साथ ही हम मनुष्यों का यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि हम भोग से क्षीण हो जाने वाले ऐश्वर्य को अपने उत्पादक कर्म द्वारा संसार में सदा बढ़ाते भी जाएँ। प्रत्येक अन्न खाने वाले का कर्त्तव्य है कि वह अन्न को उत्पन्न करने में कुछ-न-कुछ सहायता भी दे। यही यज्ञ-कर्म है। जो लोग यह यज्ञ-कर्म नहीं करते उन्हें परमात्मा की अग्नियाँ जलाने लगती हैं; उन्हें दु:ख से सन्तप्त होना पड़ता है। परमात्मा की जगत् में स्थापित वे अग्नियाँ जो हम मनुष्यों के लिए भोग-ऐश्वर्यों को उत्पन्न कर रही हैं, उन्हें यदि हम भोग भोगने के बाद अपने यज्ञ-कर्म द्वारा अगले भोगों के उत्पन्न करने के लिए सहायता न देंगे-उस दिशा में उद्दीप्त न करेंगे, तो वे अग्नियाँ हमें सन्तप्त करने लगेंगी। यही संसार में दु:खों के अस्तित्व का रहस्य है। भोग के साथ यज्ञ जुड़ा हुआ है। मनुष्य-समाज इसी प्रकार चल रहा है। मनुष्य परस्पर मिलकर अपने परिश्रमों से भोग्य-वस्तुओं को बढ़ा रहे हैं, परन्तु मनुष्य-समाज में जो मनुष्य स्वार्थी होकर भोग का सुख लेना चाहते हैं, पर यज्ञ-कर्म (परिश्रम) नहीं करना चाहते, उनकी उस 'दुरिष्टि' द्वारा हमारे मनुष्य-समाजरूपी यज्ञ में भङ्ग होता है। उनकी इस दुष्प्रवृत्ति से उनका पतन होता है, उनका आत्मतेज दबता जाता है। इस उलटे चक्र को चलाने का यत्न करने के कारण उनको संसार का ताप, दु:ख भी मिलता है, परन्तु उनकी इस वैयक्तिक हानि से हमारे मनुष्य-समाज की भी क्षति होती है, मनुष्य-समाज को उनका बोझ सहना पड़ता है। उनको कष्ट व अनुताप इसीलिए होता है, इसीलिए मिलता है कि वे यह समझ जाएँ कि उन्हें मनुष्य-समाजरूपी यज्ञ का भङ्ग नहीं करना चाहिए। उन्हें केवल भोग भोगने की अपनी 'दुरिष्टि' को बदलकर यज्ञ-कर्म करने की 'स्विष्टि' में ले-जाना चाहिए। अहा! सब मनुष्य-समाज के व्यक्ति इस सत्य को समझें और सभी स्वेच्छा से यज्ञ-कर्म द्वारा जगत् के ऐश्वर्य को बढ़ाने में सहायक हों तो कैसा सुख हो! किसी को अनुतप्त न होना पड़े, समाज की उन्नति होती जाए।

प्र.53- सिद्धपुर का मेला कब लगता है?

उत्तर-कार्तिक मास में।

प्र.54-शुद्ध चैतन्य सिद्धपुर के मेले में क्यों जाना चाहता था?

उत्तर-ताकि किसी योगी से मेल हो जाए।

प्र.55-सिद्धपुर को जाते समय शुद्ध चैतन्य को साधु कहां मिला?

उत्तर-कोट कांगड़ा ग्राम में।

प्र.56-वैरागी साधु ने क्या सूचना कर्षन जी को दी?

उत्तर-साधु ने कहा कि मूलशंकर आपको सिद्धपुर मेले में मिल सकता है।

प्र.57-सूचना पाकर कर्षन तिवारी सैनिकों सहित कहां पहुंचे?

उत्तर-सिद्धपुर मेले में।

प्र.58-कर्षन जी को मूलशंकर कहां और किस वेष में मिले?

उत्तर-एक शिवालय में गेरूए वस्त्रों में।

प्र.59-पिता के मिलने पर मूलशंकर ने क्या कहा?

उत्तर- मूलशंकर ने कहा कि मैं बहकावे में आ गया था।

प्र.60-सबसे पहले मूलशंकर के पिता ने क्या किया।

उत्तर-मूलशंकर के गेरूए वस्त्रों को फाड़ दिया।

आर्य मर्यादा साप्ताहिक में विज्ञापन देकर लाभ उठाएं।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।